ResearchGate

See discussions, stats, and author profiles for this publication at: https://www.researchgate.net/publication/378342739

01 □□□□□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□ □□□□□□□□ □□ □□□□□□ – Article of Sanskrit University LKO.

Chapter · April 2020

CITATIONS
0

1 author:

Neeraj Kumar Jain
Nootan Homoeopathic Medical College and Hospital Sankalchand Patel University Visnagar

4 PUBLICATIONS **0** CITATIONS

SEE PROFILE

All content following this page was uploaded by Neeraj Kumar Jain on 21 February 2024.

The user has requested enhancement of the downloaded file.

संस्कृतवाङ्मयस्य विकासे जैनबौद्धाचार्याणामवदानम्

(राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य मानितविश्वविद्यालयस्य
स्वर्णजयन्तन्त्यवसरे प्रकाशिता संगोष्ठी-स्मारिका)

प्रधान-सम्पादकः प्रो. विजयकुमारजैनः

सम्पादकः डॉ. गुरुचरणसिंहनेगी

सह-सम्पादिका डॉ. कृष्णा कुमारी

© प्रकाशकः प्राचार्यः,
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः) लखनऊ-परिसरः,
विशालखण्डः-4, गोमतीनगरम्, लखनऊ-226010 (उ.प्र.)
Email: rkslucknow@yahoo.com

प्राप्ति-स्थानम् प्राचार्यः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः) लखनऊ-परिसरः,
विशालखण्डः-4, गोमतीनगरम्, लखनऊ-226010 (उ.प्र.)
Email: rkslucknow@yahoo.com

संस्करणम् 2020

ISBN 978-81-9?9896-5-3
978-81-949896-5-3

मूल्यम् - रु. 100/-

मुद्रक : - पनार ऑफसेट, अशोक मार्ग, लखनऊ

विषय-सूची

बौद्धदर्शन-खण्ड

1.	संस्कृत वाङ्मय में आर्यशूर का योगदान : जातकमाला के विशेष सन्दर्भ में	प्रो. प्रद्युम्न दुबे	1
2.	आचार्य दिङ्नाग का योगदान	प्रो. विजयकुमार जैन	10
3.	चीनी भाषा में उपलब्ध बौद्ध वाङ्मय (सर्वास्तिवादी अभिधर्म ग्रन्थों के विशेष सन्दर्भ में)	प्रो. लालजी 'श्रावक'	14
4.	बौद्धतन्त्र साहित्य की अभिवृद्धि में भारतीय आचार्यों का योगदान	प्रो. बनारसी लाल	32
5.	आचार्य वीर्यश्री द्वारा विरचित अर्थविनिश्चय-सूत्र की टीका निबन्धन के शीर्षक की सार्थकता एवं महत्त्व	प्रो॰ विमलेन्द्रकुमार	44
6.	महायान के विकास में आर्य असंग का योगदान	प्रो. अरुणा शुक्ला	53
7.	संस्कृत वाङ्मय के विकास में आचार्य अश्वघोष का योगदान	प्रो. करुणाशंकर दूबे	58
8.	संस्कृत वाङ्मय के विकास में आचार्य कमलशील का योगदान	डॉ. श्रीमती राका जैन	71
9.	बौद्ध संस्कृत साहित्य में आचार्य आर्यदेव का अवदान	डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी	77
10.	संस्कृत वाङ्मय के विकास में आचार्य नागार्जुन का योगदान (निर्वाण के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. विशाखा शुक्ला	88
11.	बौद्धसंस्कृत साहित्य के विकास में आचार्य चन्द्रकीर्ति का योगदान	डॉ. मोहन मिश्र	97
12.	आचार्य धर्मकीर्ति का संस्कृत बौद्ध दर्शन में योगदान	डॉ. प्रियंका	102
13.	आचार्य मैत्रेयनाथ का बौद्ध संस्कृत वाङ्मय में योगदान	डॉ. सोनल सिंह	109
14.	बौद्ध साहित्य के विकास में आचार्य वसुबन्धु का योगदान	प्रतिमा मिश्रा	119
15.	लंकावतारसूत्र में विज्ञानवाद	डॉ. सुष्मिता	122

आयुर्वेद के विकास में जैनाचार्यों का योगदान

- डॉ. नीरज कुमार जैन

आयुर्वेद, भारतीय आयुर्विज्ञान है। आयुर्विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को निरोग रखने, रोग हो जाने पर रोग से मुक्त करने अथवा उसका शमन करने तथा आयु बढ़ाने से है।

हिताहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम्।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेद: स उच्यते॥ -(चरक संहिता१/४०)

अर्थात जिस ग्रंथ में- हित आयु (जीवन के अनुकूल), अहित आयु (जीवन के प्रतिकूल), सुखआयु (स्वस्थ जीवन), एवं दु:ख आयु (रोग अवस्था)-इनका वर्णन हो उसे आयुर्वेद कहते हैं।

जैनागम में द्वादशांग के अन्तर्गत बारहवें दृष्टिवादांग के चतुर्दश पूर्व में ''प्राणावाय पूर्व'' का प्रतिपादन किया गया है। इसे वर्तमान में आयुर्वेद के नाम से जाना जाता हैं।

जैन सिद्धांत के अनुसार विश्व की समस्त विद्याओं और कलाओं की उत्पत्ति आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से मानी गई है। समस्त विद्याओं-कलाओं ज्ञान-विज्ञान के वे ही आद्य उपदेष्टा हैं तथा विभिन्न विद्याओं के प्रवर्तक हैं।

श्रुत केवली द्वारा उपविष्ट अन्यान्य विषयों में आयुर्वेद भी समाविष्ट हैं, अत: जिन वीतरागी मुनिजनों ने अन्य विषयों का उपदेश श्रुत केवली से ग्रहण किया उन्होंने अन्य विषयों के साथ आयुर्वेद का भी ज्ञान ग्रहण किया। उनमें से कुछ मुनिप्रवर ऐसे हुए जिन्होंनें अन्य विषयों के साथ-साथ आयुर्वेद विषय को भी अधिकृत कर स्वतन्त्र ग्रंथ रचना की। इनमें से बहुत थोड़े से ग्रंथों का उल्लेख या जानकारी मिल पाई है। आयुर्वेद शास्त्र की परम्परा का उल्लेख श्री उग्रादित्याचार्य ने अपने ग्रंथ कल्याण कारक में इस प्रकार किया है-

''जिस प्रकार अन्य तीर्थंकरों (आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव के पश्चात् अन्य अजितनाथ आदि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों) द्वारा प्रतिपादित सिद्ध मार्ग से चला आया, वह आयुर्वेद शास्त्र अत्यन्त विस्तृत, दोष रहित तथा गंभीर अर्थ से युक्त है। यह सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र तीर्थंकरों के मुखकमल से अपने आप उत्पन्न होने से स्वयम्भू और अनादिकाल से निरन्तर चला आने के कारण सनातन है। यह आयुर्वेद, गोवर्धन, भद्रबाहु आदि श्रुत केवलियों द्वारा उपविष्ट होने के कारण अन्य वीतरागी श्रुताभ्यासी मुनिजनों द्वारा साक्षात् रूप से सुना गया।''

अन्य विद्याओं की भांति आयुर्वेद शास्त्र भी लोकहितार्थ तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अतः यह भी धर्मशास्त्र आदि की भांति जिनागम है। जिनागम की अनवरत परम्परा के अनुसार तीर्थंकरों से गणधरों ने, गणधरों से प्रति गणधरों ने, प्रतिगणधरों से, श्रुत केवलियों ने श्रुत केवलियों से वीतरागी मुनियों ने, वीतरागी मुनियों से, अन्य आचार्यों आदि ने आयुर्वेद का ज्ञान उपदेश रूप से ग्रहण कर आद्यन्त जान लिया और तत्पश्चात् लोकहित की भावना से प्रेरित होकर उसे लिपिबद्ध कर ग्रंथ रूप प्रदान किया जिससे शास्त्र या ग्रंथ रूप में कुछ अंशों में ही वह सुरक्षित रह पाया। आयुर्वेद के अनेक ग्रंथ, जिनका उल्लेख विभिन्न आचार्यों ने किया है, काल कवलित होने से लुप्त प्रायः हो गए हैं।

श्री उग्रादित्याचार्य अपने ग्रंथ **''कल्याणकारक''** में ऐसे अनेक मुनियों-आचार्यो द्वारा प्रणीत ग्रंथों का उल्लेख किया है। जिनके आधार पर उन्होंने अपने ग्रंथ 'कल्याणकारक' की रचना की।

इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने कल्याणकारक में स्पष्टतया पूर्वक इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि 'आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने आयुर्वेद विषय को अधिकृत कर किसी ग्रंथ की रचना की थी जिसमें विस्तारपूर्वक विषय का विवेचन था । अष्टांग संग्रह नामक ग्रंथ का अनुसरण करते हुए मैंने संक्षेप में इस कल्याणकारक ग्रंथ की रचना की है।''

श्री उग्रादित्य के इस उल्लेख से यह असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होता है कि उनके काल में श्री समन्तभद्र स्वामी द्वारा विरचित अष्टांग वैद्यक विषयक कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ अवश्य ही विद्यमान एवं उपलब्ध रहा होगा।

इसी प्रकार ज्ञान गाम्भीर्य और प्रखर पाण्डित्य धारी श्री पूज्यपाद स्वामी का आयुर्वेद ग्रंथ कर्तृत्व असंदिग्ध है। यद्यपि उनके द्वारा लिखित आयुर्वेदाधारित कोई ग्रंथ या रचना वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, अतः कुछ विद्वान उनका आयुर्वेद ग्रंथ कर्तृत्व संदिग्ध मानते हैं। किन्तु ऐसे अनेक उद्धरण और प्रमाण उपलब्ध हैं जो उनके द्वारा आयुर्वेद के ग्रंथ की रचना किए जाने की पुष्टि करते हैं। आचार्य शुभचन्द्र ने अपने ग्रंथ ''ज्ञानार्णव'' में देवनन्दी (पूज्यपाद) को निम्न प्रकार से नमस्कार किया है:-

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक् चित्तसम्भवम्।
कलंकमग्निनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

जिनके वचन प्राणियों के काय, वाक् (वाणी) और चित्त (मन) में उत्पन्न दोषों को दूर कर देते हैं उन देवनन्दी को नमस्कार है। इसमें देवनन्दी (पूज्यपाद) के तीन ग्रंथो का उल्लेख सन्निहित है- काय (शरीर) के दोषों को दूर करने वाला **वैद्यक शास्त्र**, वाग्दोषों (वाणी या वचन

के दोषों) को दूर करने वाला व्याकरण ग्रंथ (**जैनेन्द्र व्याकरण**) और चित्त (मन) के दोषों को दूर करने वाला ग्रंथ- **समाधि तंत्र**। इनमें प्रथम वैद्यक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, जबकि शेष दोनों विषयों के दोनों ग्रंथ उपलब्ध हैं। अनेक विद्वानों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है, इस तथ्य को स्वीकार किया है, कि उपर्युक्त श्लोक में ''काय'' शब्द से यह ध्वनित होता है कि पूज्यपाद स्वामी का कोई चिकित्सा ग्रंथ रहा है। इसके अतिरिक्त श्री उग्रादित्यचार्य ने अपने ग्रंथ कल्याणकारक की रचना में जिन आचार्यों, मुनिवरों के द्वारा रचित ग्रंथों को आधार बनाया है उनमें श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित शालाक्य तंत्र का भी उल्लेख है। गोम्मट देवमुनि ने भी पूज्यपाद द्वारा **वैद्यामृत** नामक ग्रंथ की रचना किए जाने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार पार्श्व पण्डित ने भी पूज्यपाद स्वामी द्वारा आयुर्वेद के ग्रंथ की रचना किए जाने का संकेत किया है। इस प्रकार इन उद्धरणों से यह सुस्पष्ट है कि श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा आयुर्वेदाधारित ग्रंथ या ग्रंथों का प्रणयन किया गया था जो उनके उत्तरवर्ती मुनियों को दृष्टिगत थे। आयुर्वेदाधारित ग्रंथ निर्माण की यह परम्परा आगे भी चलती रही और मुनियों आचार्यों ने आयुर्वेद को अधिकृत कर ग्रंथों की रचना की। आचार्य ने आयुर्वेद के जिस विषय को अधिकृत कर जिस ग्रंथ विशेष का निर्माण किया उसका उल्लेख करते हुए श्री उग्रादित्याचार्य लिखते हैं-

''श्री पूज्यपाद स्वामी ने शालाक्य तंत्र और पात्र केसरी मुनि ने शल्य तंत्र की रचना की। प्रसिद्ध आचार्य सिद्धसेन के द्वारा अगद तंत्र एवं भूत विद्या, दशरथ मुनि के द्वारा काय चिकित्सा, मेधनादाचार्य के द्वारा बालरोगाधारित कौमार भृत्य और सिंहनाद मुनीन्द्र के द्वारा वाजीकरण एवं दिव्यामृत (रसायन) तंत्र का निर्माण किया गया। दुःख का विषय है कि इनमें से कोई भी ग्रंथ आज विद्यमान नहीं है। किन्तु इन ग्रंथों का आधार लेकर जिस ग्रंथ की रचना की गई वह है 'कल्याणकारक' जो लगभग विक्रम एवं ईसा की 9 वीं शताब्दीं में लिखा गया। इसके बाद भी जैनाचार्यों द्वारा आयुर्वेद के ग्रंथ निर्माण का कार्य चलता रहा। इस प्रकार प्राणवाय (प्राणावाय) पूर्व की विकास यात्रा सुदीर्घ काल तक हमारे देश में चलती रही।

जैन धर्म में आयुर्वेद को प्राणावाय (प्राणावाद) पूर्व के नाम से प्रतिपादित किया गया है- यही इसमें मौलिक अन्तर है। अनेक जैनाचार्यों ने इसी आधार पर अनेक आयुर्वेद के ग्रन्थों की रचना की है जिसमें अनेक ग्रन्थ हमारी उपेक्षा और असावधानी के कारण काल कवलित हो गये हैं। जैसे - समन्तभद्र स्वामी द्वारा रचित सिद्धान्त रसायन कल्प, पुष्पायुर्वेद आदि, पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित रत्नाकरौषध योग, वैद्यामृत, कल्याणकारण आदि, अमृतनन्दिकृत अकारादि निघण्टु, मंगराज द्वारा रचित 'खगेन्द्र मणिदर्पण, मुनि यशः कीर्तिकृत जगत्सुदरी प्रयोग माला आदि, श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित 'वेज्जगाहा' (वैद्यगाथा) इत्यादि।

प्राणावाय पूर्व (जैनायुर्वेद) की यह प्राचीन परम्परा मध्ययुग से पूर्व ही लुप्त हो चुकी थी। क्योंकि प्राणावाय पूर्व परम्परागत शास्त्रों-ग्रंथों के आधार पर अथवा उनके सार रूप में ईसवीय आठवीं शताब्दी के अन्त में दक्षिण भारत के आन्ध्रप्रदेश के प्राचीन चालुक्य राज्य में दिगम्बराचार्य श्री उग्रादित्य ने "**कल्याणकारक**" नामक ग्रंथ की रचना की थी। वर्तमान में यही एक मात्र ऐसा ग्रंथ उपलब्ध होता है जिसमें प्राणावाय पूर्व का अनुसरण करते हुए सम्पूर्ण अष्टांग आयुर्वेद का वर्णन विस्तार से किया गया है। श्री उग्रादित्याचार्य के पश्चात् किसी अन्य आचार्य द्वारा प्राणावाय पूर्व पर आधारित सर्वांग पूर्ण ग्रंथ का विवरण या उल्लेख नही मिलता है। यद्यपि चौदहवीं शताब्दी के मुनि यशकीर्ति द्वारा लिखित '**जगत् सुन्दरी प्रयोग माला**' नामक ग्रंथ की जानकारी प्राप्त होती है। यह ग्रंथ अपभ्रंश संस्कृत मिश्रित भाषा में लिखा गया है। इसका उल्लेख स्व. श्री जगुलकिशोर मुख्तार ने अनेकान्त में किया है तथा इस पर कुछ प्रकाश डाला है। इसी प्रकार लगभग ई. सन् की १३६० के आसपास जैन कवि भंगराज के द्वारा लिखित "**खगेन्द्र मणि दर्पण**" नामक ग्रंथ की जानकारी मिलती है। यह ग्रंथ स्थावर विष की चिकित्सा (अगदतंत्र) पर आधारित है। यह ग्रंथ कन्नड़ लिपि में लिखा गया है जिसे मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा कन्नड़ सीरीज के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया था।

ईसा की तेरहवीं शताब्दी से जैन श्रावकों और यति मुनियों के द्वारा रचित आयुर्वेद के ग्रंथों की जानकारी प्राप्त होती है। कतिपय ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु उन्हें प्राणावाय पूर्व की परम्परा के ग्रंथ कहना युक्ति संगत या समीचीन नहीं होगा, क्योंकि उनमें कहीं भी प्राणावाय के अनुसरणका कोई संकेत या प्रमाण नहीं मिलता है।

वैसे तो आयुर्वेद एवं प्राणावाय पूर्व के ग्रंथों में लगभग समान रूप से अष्टांग आयुर्वेद जैन निदान, चिकित्सा, स्वस्थवृत्त, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र आदि का विवेचन किया गया है, किन्तु प्राणावाय पूर्व में आयुर्वेद की अपेक्षा कुछ विशेषता भी है। जैसे आयुर्वेद में शारीरिक और मानसिक भेद से प्रकार का स्वास्थ्य प्रतिपादित किया गया है- शरीर को धारण करने वाले तीन दोष (वात-पित्त-कफ), सात धातुएं (रस-रक्त-मांस-मेढ-अस्थि-मज्जा और शुक्र) तथा तीन मल (स्वेद-मूत्र-पुरीष) ये समस्त भाव जब तक शरीर में समान रूप से संतुलित रहते हैं तब तक शरीर में कोई विकार या रोग उत्पन्न नहीं होता है और शरीर स्वस्थ एवं निरोग बना रहता है, यही मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य है। इसी प्रकार कोई मानसिक दोष (रज या तम) तब तक मनुष्य के मन में विकृति या रोग उत्पन्न नहीं करता तब तक वह भी मानसिक रूप से स्वस्थ या अविकृत रहता है - यह मानसिक स्वास्थ्य है। उपर्युक्त द्विविध स्वास्थ्य यद्यपि प्राणावाय शास्त्र (जैनायुर्वेद) में भी अभीष्ट है तथापि अध्यात्म प्रधान होने से प्राणावाय शास्त्र में स्वास्थ्य के दो भेद भिन्न प्रकार से प्रतिपादित किए गए हैं। यथा- पारमार्थिक स्वास्थ्य और व्यावहारिक स्वास्थ्य। श्री उग्रादित्याचार्य के

अनुसार प्रथम पारमार्थिक स्वास्थ्य प्रधान या मुख्य है और द्वितीय व्यवहार स्वास्थ्य अप्रधान या गौण है।

लोकोपकार और उसके माध्यम से आत्म कल्याण को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। क्योंकि लोकोपकार के कारण मनुष्य एक ओर तो दूसरों का हित करता ही है, दूसरी ओर पुण्य संचय के कारण अपना भी हित करता है।

हमारे स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाले कारणों में रोग मुख्य कारण है जो हमारे असंयमित एवं मिथ्या आहार-विहार के कारण उत्पन्न होते हैं - ऐसा आयुर्वेद का अभिप्राय- कथन है किन्तु प्राणावाय शास्त्र के अनुसार रोगोत्पत्ति का मुख्य हेतु पूर्वजन्म कृत अपने पूर्वकृत कर्म हैं। इस सम्बन्ध में श्री उग्रादित्याचार्य का निम्न कथन महत्वपूर्ण है-

सहेतुकास्सर्वविकारजातास्तेषां विवेको गुणमुख्यभेदात् ।
हेतुः पुनः पूर्वकृतं स्वकर्म ततः परे तस्य विशेषणानि ॥[४]

अर्थात् शरीर में सर्व विकार सहेतुक होते हैं, किन्तु उन हेतुओं को जानने के लिए गौण और मुख्य विवक्षा विवेक से काम लेने की आवश्यकता है । सभी रोगों- विकारों का मुख्य हेतु अपने पूर्वकृत कर्म हैं । शेष उसके विशेषण (निमित्तकारण) या गौण हैं। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य करते हैं -

न भूतकोपान्न च दोषकोपान्न चौव सांवत्सरिकोपरिष्टात् ।
ग्रहप्रकोपात् प्रभवन्ति रोगाः कर्मोदयोदीरण भावतस्ते ॥[५]

अर्थात् रोग पृथ्वी आदि महाभूतों के प्रकोप से उत्पन्न नहीं होते हैं और न ही दोषों के प्रकोप से रोग उत्पन्न होते हैं। वर्षफल की विकृति होने से या मंगल आदि ग्रहों के प्रकोप से भी रोगों की उत्पत्ति नहीं होती है। रोग कर्मोदय और कर्मों कर उदीरणा से उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार प्राणावाय शास्त्र में प्रतिपादित चिकित्सा का स्वरूप भी आयुर्वेद तथा अन्य चिकित्सा पद्धतियों में प्रतिपादित स्वरूप भिन्न है। प्राणावाय के अनुसार रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण पूर्व जन्मकृत हमारे स्वकर्म होते हैं, अतः उन कर्मों का क्षय या उपशमन होना ही उन रोगों की चिकित्सा है। श्री उग्रादित्याचार्य ने यही भाव व्यक्त करते हुए चिकित्सा का स्वरूप निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है -

तस्मात्स्वकर्मोपशमक्रियाया व्याधिप्रशान्तिं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
स्वकर्मपाको द्विविधो यथावादुपाय कालक्रमभेदभिन्नः ॥[६]

अर्थात् स्वकर्म के उपशम की क्रिया को रोग का उपशमन करने वाली क्रिया (चिकित्सा)

तत्शास्त्रज्ञ कहते हैं। स्वकर्म पाक (अपने कर्म का पकना) दो प्रकार होता है- एक यथाकाल पकना तथा दूसरा उपाय से उसे पकाना। इसे उदाहरणपूर्वक निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है-

उपायपाको वरघोवीरतपप्रकारैस्सुविशुद्धमार्गैः ।
सद्यः फलंयच्छति कालपाकः कालान्तरायः स्वयमेव दद्यात् ॥[७]

अर्थात् उत्कृष्ट घोरवीर तप आदि विशुद्ध उपायों से (कर्म का उदयकाल नहीं होते हुए भी) कर्म को उदय मंर लाना यह एक उपाय पाक कहलाता है, इससे उसी समय पूर्वजन्मकृत कर्मों का फल मिल जाता है। कालान्तर में यथा समय (अपने आयुष्यावसान में) कर्म स्वयं उदय में आकर (पककर) फल देते हैं - यह काल पाक है।

निःस्वार्थ भाव से की गई चिकित्सा एक वैद्य को सभी उत्तम फलदायक होती है उसकी फलभृति बतलाते हुए आचार्य श्री कहते हैं -

एवं कृत्वा सर्वफलप्रसिद्धिं स्वयं विदध्यादिह या चिकित्सा ।
सम्यक् कृता साधुकृषिग्रथार्थ ददाति तत्पुरूष दैवयोगात् ॥[१७]

अर्थात् इस प्रकार उपर्युक्त उद्देश्य से की गई चिकित्सा उस वैद्य को सभी उत्तम फल देती है जिस प्रकार अच्छी प्रकार से की गई कृषि, कृषि बल, पोरूष एवं दैवयोग से स्वयं धन संचय कराती है, उसी प्रकार शुद्ध हृदय से की गई चिकित्सा भी वैद्य को इह लोक पर परलोक में सभी सुख देती है।

चिकित्साशास्त्रीय प्रमुख संस्कृत ग्रन्थ-

चिकित्साशास्त्र के विकास में जैनाचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कृत में चिकित्साशास्त्र का विपुल शास्त्र है । प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार है--

1 पादलिप्तसूरि (प्रथम-द्वितीय शती) कृत तरंगवती, ज्योतिष करण्डक प्रकीर्णक निर्वाण कलिका और प्रश्नप्रकाश, रसायनविद्या एवं सुवर्णसिद्धि, विषयन्त्र।

2 जैन सिद्ध नागार्जुन (प्रथम-तृतीय शती) कृत योगरत्नमाला, लौहशास्त्र और नागार्जुनीकल्प-तंत्र-मंत्र और रसविद्या विषयक ।

3 समन्तभद्र कृत सिद्धान्त रसायन कल्प-उग्रादित्याचार्य ने कल्याणकारक की रचना समन्तभद्र द्वारा रचित अष्टांग युक्त ग्रन्थ के आधार पर की -

'अष्टांगमध्यरिवात्र समन्तभद्रैः प्रोक्तं रसविस्तारवचो विभवैर्विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम्॥'

समन्तभद्राचार्य के 'सिद्धरसायनकल्प' में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग एवं संकेत है जैसे रत्नत्रयौषधम कहने से जैन सिद्धान्तानुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र ९०५ इन रत्नत्रय के

ज्ञान होता है दूसरे अर्थ में पारद, गन्धक और पाषाण- ये तीनों पदार्थ लए जाते हैं । इनसे निर्मित रसायन-वात पित्त, कफ-इन त्रिदोषों को नष्ट करता है। औषधि निर्माण में द्रव्यों के प्रमाणों को तीर्थंकरों की संख्या और चिन्हों के द्वारा सूचित किया गया है। जैसे- रससिन्दूर निर्माण में पारद गन्धक का प्रमाण 'सूतं केसरी गन्धक मृगनवा सारद' कहा है। यहां केशरी महावीर का चिन्ह है और महावीर 24वें तीर्थंकर है अत: पारद की मात्रा 24 भाग लेनी चाहिए। मग 16वें तीर्थंकर का चिन्ह होने से गन्धक की मात्रा 16 भाग लेनी चाहिए।

समन्तभद्र कृत 'पुष्पायुर्वेद' में परागरहित पुष्पों से ही रसायनौषधियों के प्रयोगों ही लिखा है। अभी तक पुष्पायुर्वेद की रचना जैनाचार्यों के अतिरिक्त और किसी ने नहीं की।

4. आचार्य पूज्यपाद कृत वसवराजीयम, योगरत्नाकर, रसप्रकाश सुधाकर और कल्याण कारक (12वींशती) 'वसवराजीयम्' में पूज्यपादाचार्य ने अनेक रसकल्पों का उल्लेख किया है जैसे- सर्वज्वारादि हर गुटिका (पृ. 29), शोफमुद्गार रस पृ. 85, ज्वराजाकुंश (पृ. 30), गन्धकरसायनम् (पृ.110), चण्डभानक (पृ.30), रसेन्द्रगुटिका कालाग्निरूद्ररस (पृ.33) नागेन्द्रगुटिका (पृ.163.) त्रिनेत्ररक्ष पृ.34,143, मृतसंजीवनी गुटिका पृ. 197 लोकनाथ रस पृ.78 शैलेन्द्ररस (पृ. 213), व्याधिहरणरस (पृ.232.), गरुडाननम् (पृ.266), पारदादि गुटिका (पृ.291), स्थौल्यान्तकरस (पृ.274) आचार्य पूज्यपाद का रसौषधि में योगदान बहुमूल्य रहा होगा। योगरत्नाकर में मृतसंजीवनी वटी के निर्माण के प्रसंग में आचार्य पूज्यपाद का उल्लेख आविष्कारक के रूप में प्राप्त होता है जैसे-

मूर्छाभ्रमोगरोगं च वान्ति पित्तं च नाशयेत् ।
मृतं संजीवनी नाम्ना पूज्यपादैरुदीरिता।

चन्दनादि चूर्ण के सन्दर्भ में भी आचार्य पूज्यपाद का नाम आता है ।

कामलांश्च प्रमेहाश्च पित्तज्वर विनाशनम्।
चन्दनाद्यमिदं चूर्ण पूज्यपादेन भाषितम्॥

5. उग्रादित्याचार्य कृत कल्याणकारक अष्टम शती में प्रचलित चिकित्सा प्रयोगों और रसौषधियों से भिन्न और सर्वथा नवीन प्रयोग इसमें है। कल्याण कारक में रसविषयक 24वां अध्याय 'रसायन विध्यधिकार' स्वतंत्र है। रस पारद का उपयोग है। इसकी तीन विशेषताएं हैं - 1. औषधियों का वर्णन है जो वनस्पति या खनिज जगत या उसके संसाधन से प्राप्य है। 2 अन्तिम हिताहिताध्याय में मद्य, मांस और मधु का उपयोग अनुचित बताया गया। है। 3. इसका आयुर्वेदिक विवरण जैनेतर-ग्रन्थों से भिन्न है। यह त्रिदोषों पर आधारित है।

6. गुणाकर कृत अमृत रत्नावली (वि.सं. 1239 ई.)।

7. श्री अनन्तदेवसूरि कृत रस चिन्तामणि (14-15वीं शती)।

8. माणिक्य चन्द्र कृत रसावतार (14-15वीं शती)।

9. मेरुतुंग कृत रसाध्याय टीका (ई.1389)।

10. हर्षकीर्तिसूरि कृत योगचिन्तामणि (वि. सं. 1657)।

औषध योगो का संग्रह है। कल्पनाओं के आधार पर सात अध्याय हैं- पाक, चूर्ण, गुटी, क्लाथ, घृत, तैल, मिश्र। इनकी तेलगू भाषा में टीका प्राप्य है।

11. समरथ कृत रसमंजरी (वि.सं. 1764)

12. सोमप्रभाचार्य कृत रसप्रयोग इनमें अधिकांश ग्रन्थ ओरियन्टल रिसर्च इस्टीट्यूट पूना में उपलब्ध हैं।

प्राचीन भारतीय शिलालेख के आधार पर यह निष्कर्ष किया जा सकता है की प्राचीन जैन विद्याश्रमों मैं न केवल विद्यार्थियों को ज्ञान विज्ञान गणित कला साहित्य दर्शन और चिकित्सा मैं निपुण किया जाता था वरन असहाय निर्धन और बीमार व्यक्तियों का उपचार भी किया जाता था । दक्षिण भारत की जैन गुफाओं के आस पास कई पत्थर के खरल प्राप्त हुये है जिनमे संभवतः इयान बीमार और व्याधि ग्रस्त व्यक्तियों का उपचार किया जाता था । जैन पद्धति से उपचार में प्रसिद्ध जैन आचार्य उग्रादित्य ने आचार्य पूज्यपाद द्वारा लिखित ग्रंथ पर टीका लिखी जिसका नाम कल्याणकारक है। यह ग्रंथ आयुर्वेद ग्रन्थों में काफी महत्वपूर्ण है। आचार्य उग्रादित्य प्रसिद्ध राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष (814-878 ई.) के समकालीन थे। कई अन्य प्राचीन जैन आचार्यों और चिकित्सकों के नाम भी इस ग्रंथ में आए है । इनमें से कुछ आचार्यों के नाम यहाँ उल्लेखित है-

- दरसाधु गुरु - काया चिकित्सा, - मेघनाद - बाल चिकित्सा, सिद्धसेन-गृह चिकित्सा,
- सिद्धसेन - विष चिकित्सा, पत्रपाद स्वामी - शल्य तंत्र, पूज्यपाद - शालाक्य तंत्र,
- सिंहनाद - रसायन, सिंहनाद -वजीकरण

आधार-ग्रन्थ

1. जैन-संस्कृति के विविध आयाम, डॉ. श्रीमती राका जैन, 3/65, विकास खण्ड, मैत्री कुटीर, गोमतीनगर, लखनऊ, 2015

2. जैन संस्कृति सौरभ, श्री पुष्प वर्षायोग समिति, बाराबंकी (उ.प्र.) 2014

*****

विद्वानों के नाम

1. प्रो. प्रद्युम्न दूबे
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
पालि एवं बुद्धिस्ट स्टडी, कला संकाय
काशी हिन्दी विश्वविद्यालय, वाराणसी

2. प्रो. विजय कुमार जैन,
अध्यक्ष- बौद्धदर्शन विभाग एवं प्राचार्य,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ

3. प्रो. लाल जी श्रावक, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
पालि एवं बुद्धिस्ट स्टडी, कला संकाय
काशी हिन्दी विश्वविद्यालय, वाराणसी

4. प्रो. बनारसी लाल
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,
सारनाथ, वाराणसी

5. प्रो. विमलेन्द्र कुमार, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
पालि एवं बुद्धिस्ट स्टडी, कला संकाय
काशी हिन्दी विश्वविद्यालय, वाराणसी

6. प्रो. अरुणा शुक्ला,
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग
लखनऊ निश्वविद्यालय, लखनऊ

7. डॉ. करुणाशंकर दूबे .
निदेशक, आकाशवाणी (सेवानिवृत्त)
लखनऊ

8. डॉ. राका जैन, पी.डी.एफ.
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

9. डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर-बौद्धदर्शन विभाग
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

10. डॉ. विशाखा शुक्ल
आई.सी.पी.आर. फेलो,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

11. डॉ. मोहन मिश्र
पी.डी.एफ. पालि,
पालि अध्ययन केन्द्र,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

12. डॉ. प्रियंका
पी.डी.एफ. पालि,
पालि अध्ययन केन्द्र,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

13. डॉ. सोनल सिंह
पी.डी.एफ. पालि,
पालि अध्ययन केन्द्र,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

14. प्रतिमा मिश्रा, शोधच्छात्रा
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

15. डॉ. सुष्मिता व्यास
असिस्टेंट प्रोफेसर-दर्शन
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

16. डॉ. कृष्णा कुमारी
अतिथि अध्यापिका- बौद्धदर्शन विभाग
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ

17. डॉ. प्रदीप कुमार द्विवेदी
संविदा अध्यापक-बौद्धदर्शन विभाग
अगरतला परिसर (त्रिपुरा)

18. डॉ. घनश्याम पाल, आई.सी.पी.आर. फेलो,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ

19. टाशी नामगेल, शोधच्छात्र- बौद्धदर्शन
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर, लखनऊ

20. प्रो. श्रीयांश सिंघई
संकाय प्रमुख-राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
(मा.वि.वि.) दिल्ली दूरभाष- 9057506919
निवास- 79, बी ब्लाक, सूर्यनगर,
तारों की कूट, टोंक रोड, जयपुर (राज.)

21. प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'
निदेशक: दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

22. डॉ. सत्यप्रकाश दूबे
आचार्य संस्कृत विभाग अधिष्ठाता,
कला शिक्षा समाज विज्ञान संकाय ,
जयनारायण व्यास वि0वि0 जोधपुर

23. प्राचार्य अरुण कुमार जैन
प्राचार्य-श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर,
जयपुर (राज.)

24. प्रो. कमलेश कुमार जैन
विभागाध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर, जयपुर

25. डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग एवं हिन्दी शोध केन्द्र,
सेवासदन महाविद्यालय,
बुरहानपुर (म.प्र.)

26. डॉ. शैलेश कुमार जैन
सहायक आचार्य, श्री दिगम्बर जैन आचार्य
संस्कृत महाविद्यालय,
जैन नसिया रोड, बीरोदय नगर,
सांगानेर, जयपुर राज. -302029

27. डॉ. मनोरमा जैन, अध्यापिका
जबलपुर, मध्यप्रदेश

28. डॉ. प्रदीप शर्मा लुईटेल
सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग,
सिक्किम राज्य विश्वविद्यालय,
तादोंग, पूर्व सिक्किम

29. डॉ. नीरज कुमार जैन
एसोशिएट प्रोफेसर
राजकीय नेशनल होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज
1 विराज खंड, गोमती नगर, लखनऊ उ.प्र.

30. डॉ. अरिहन्त कुमार जैन,
पी.डी.एफ, सर्वदर्शन विभाग,
युनिवर्सिटी ऑफ मुम्बई

30. डॉ. पत्रिका जैन, पी.डी.एफ.
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

31. डॉ. आनन्द जैन
असिस्टेंट प्रोफेसर, जैन दर्शन,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

View publication stats